इष्टि विवरण

समस्त श्रौत यागों के प्रकृतियाग दर्शपूर्णमास याग है। इसको इष्टि भी कहते हैं। अत: इस के सन्दर्भ में विवरण प्रस्तुत करते हैं।

विषय सूची

क्र.सं	विषय	पृष्ठ.सं
१	श्रौतयाग तथा इष्टि	२
२.	दर्श और पूर्णमास में किसकी प्रथमानुष्ठान?	३
३.	इष्टिकाल और उपवसथ	५
४.	ऋत्विक् परिचय	५
५.	याग और होम के भेद	६
६.	व्रतग्रहण में विकल्प	६
७.	वैकल्पिक कर्म	७
८.	एकसाथ किये जाने वाले कर्म	७
९.	विविध ज्ञातव्य	८
१०.	इष्टिमें प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का विवरण	९
११.	इष्टि पात्रों का परिचय	१५
१२.	इष्टि पात्रों का सचित्र परिचय	१९
१३.	इष्टि वेदि विवरण	२५
१४.	मानवाचक प्रमाण विरण	२६
१५.	विविध ग्रन्थोक्त विहार निर्माण विधि(संस्कृत)	२६
१६.	दर्शपौर्णमास वेदि निर्माण विधि (हिन्दी में)	३०
१७.	वेदिनिर्माणप्रकार सचित्र	३३
१८.	इष्टिसंभार	३६
१९.	कपालस्वरूप सचित्र	३७
२०.	गार्हपत्य में कपालोपधान सचित्र	३८

प्रो.रमेश चन्द्र दाश शर्मा, द्वारा प्रणीत **इष्टि प्रयोग** ग्रन्थ में पौर्णमासेष्टि का सम्पूर्ण प्रयोगानुष्ठान देख सकते हैं।

दर्शपौर्णमास प्रयोग सन्दर्भ

संहिता की प्रथम अध्याय से लेकर द्वितीय अध्याय के २८—३१ तक चार मन्त्र, कात्यायन श्रौतसूत्र के द्वितीय अध्याय से लेकर तृतीय अध्याय की समाप्ति तक तथा शतपथ ब्राह्मण के सम्पूर्ण प्रथम काण्ड में दर्शपौर्णमास के प्रयोग वर्णित हैं। इस प्रकार मन्त्र—ब्राह्मण—सूत्रों के सामञ्जस्य से प्रयोग को देखा जाता है। हौत्र कर्म हौत्र सूत्र के प्रथम अध्याय से लिया गया है।

श्रौतयाग तथा इष्टि

जिस प्रकार कार्य को देखकर कारण का अनुमान किया जाता है। ठीक उसी प्रकार सृष्टि के नियम चक्र का देखते हुए नियन्ता की अनुमान प्रत्येक बुद्धिजीवी कर सकता है। सृष्टि के उस मूल तत्त्व को हम आस्तिक भारतीय श्रीमन्नारायण अपरपर्याय यज्ञ पुरुष रूप से आराधना करते हैं। **देवता को उद्देश्य बनाकर मन्त्रोच्चारण पूर्वक अग्नि में आहुति देना यही यज्ञ का स्वरूप है।** श्रौत स्मार्त भेद से यज्ञ दो प्रकार है। पहले स्मार्त का आधान होता है जो कि विवाह के समय वैवाहिक अग्नि से प्रारम्भ होता है अथवा पैतृक सम्पत्ति विभाजन के बाद स्मार्ताधान विधि से ग्रहण किया जाता है। ब्राह्मणग्रन्थों में वर्णित यागपद्धति को ऋषियों ने सूत्रबद्ध प्रणयन किया। इसलिए श्रुति द्वारा प्रतिपादित यागपद्धति, जिस सूत्र ग्रन्थ में है उसको श्रौतसूत्र कहते हैं। इस प्रकार श्रुति से (ब्राह्मण ग्रन्थों से) प्रतिपादित याग को श्रौत याग कहते हैं। समस्त श्रौतयाग इष्टि पशु सोम भेद से तीन प्रकार विभक्त है। समस्त हविर्यागों को इष्टि पद से ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु याज्ञिक सम्प्रदाय में समस्त हविर्याज्ञों के प्रकृतिभूत दर्श—पौर्णमासयाग को ही इष्टि शब्द से जाना जाता है। सपत्निक

यजमान एवं ऋत्विक् चतुष्टय द्वारा सम्पादित कर्म को इष्टि कहते हैं। इष्टि और याग पर्यायवाची ही है। **यजनाद् यागः। इज्यतेऽनेन कर्मणेतीष्टिः।** अगर भेद दृष्टि से देखा जाय तो याग बहु ऋत्विक् एवं एकाधिक दिनसाध्य पूर्वोक्त याग परिभाषा युक्त कर्म विशेष को कह सकते हैं। जैसे सोम याग, चयन याग आदि। इष्टि एक दिन साध्य है। यों तो दर्श हो या पौर्णमास तीन घण्टे के अन्दर ये सविधि सम्पन्न हो जाता है। श्रौताधान, विवाहोपरान्त स्मार्ताधान के बाद कभी भी किया जा सकता है। श्रौताधान के बाद दर्शपौर्णमास करना अनिवार्य हो जाता है। जो कि ३० साल तक करना होता है। इस के विकल्प में दाक्षायण याग है जो कि १५ साल तक किया जाता है। कुल मिला कर अग्निहोत्री को ३६० पौर्णमास याग तथा ३६० दर्शयाग ३० साल के अन्दर करना होता है। अगर यजमान चाहे तो यावज्जीव भी कर सकता है। सपत्निक यजमान को ही करने का अधिकार होने से दोनों में से कोई एक न होने पर यह अनुष्ठान क्रम समाप्त हो जाता है। सारे यज्ञपात्रों को यजमान/पत्नी जो पहले स्वर्गवासी होगा उसके साथ दाह कर दिया जाता हैं।

पौर्णमास की प्राथमिकता

दर्शपौर्णमास याग में से पौर्णमासयाग का सर्वप्रथम अनुष्ठान किया जाता है। यह निर्विवाद है। तथापि मन्त्रभाग में दर्श के मन्त्रों का पाठ पहले है और ब्राह्मण में पौर्णमास प्रयोग पहले है इस विरोधाभास का परिहार जरूरी है। दर्शपौर्णमास याग समस्त श्रौत यागों की प्रकृति याग है। विशेषतः हविर्यज्ञ संस्था की। दर्श एवं पौर्णमास याग में से पौर्णमास याग का अनुष्ठान सबसे पहले होता है। यद्यपि द्वन्द्वसमास होने से **अल्पाच्त्वात्पूर्वनिपातः** न्याय से दर्शयाग का पहले पाठ आता है तथापि यह क्रम केवल शब्दसाधुत्व प्रदर्शन के लिए है अनुष्ठान के लिए नहीं। अनुष्ठान तो श्रुत्युक्त क्रम से ही चलता है। पौर्णमास के प्रथमानुष्ठान के लिए अनेक श्रुति और श्रौत सूत्र वाक्य प्रमाण है। यथा—

पौर्णमासेन चैवामावास्येन च, पौर्णमासीं चामावास्यायां च तत्पर्वाभिषज्यन् (श.ब्रा. १.६.३६) इससे पौर्णमास का प्राथमिकता स्पष्ट है। **पौर्णमास हविरिदमेषां मध्यममावास्यं हविरिदमेषां मयि (तै.ब्र.३.७.४.८) पौर्णमासवदन्यत्।** (का.श्रौ.सू. ४.७.३) आदि वाक्य प्रमाण हैं।

सामवेदीय गोभिल गृह्यसूत्र में भी आचार्य गोभिल ने पौर्णमास की ही प्राथमिकता स्वीकार की है। **अथ दर्शपौर्णमासयोः** (गो.गृ.सू. १.५.१) इस सूत्र की व्याख्या करते हुए मुकुन्दशर्मा जी लिखते है **दर्शान्तं पौणमासाद्येकमेव प्रचक्षते इति कर्मप्रदीपवचनात् पौर्णमासादित्वावगमात् पौर्णमास्यास्तावद् व्यवस्थोच्यते।** उसके बाद दूसरे सूत्र में **सन्ध्यां पौर्णमासीमुपवसेत्** (गो.गृ.सू १.५.२) लिखते हैं। इस से स्पष्ट हो जाता है कि पौर्णमास का ही प्रथम अनुष्ठान होता है। कात्यायन ने 'मन्त्र **चोदनयोर्मन्त्रबलं प्रयोगित्वात्। न समत्वात्। गुणनां तु भूयस्त्वात्** (का.श्रौ.सू. १.५.७–९) सूत्रों से ब्राह्मण पाठ से मन्त्र पाठ को अव्यवहित क्रमोपस्थापक होना ब्राह्मण वाक्य से बलवान् मानकर फिर दोनों का समान महत्व भी स्वीकार किया है। परन्तु

तद्धितेन चतुर्थ्या वा मन्त्रवर्णेन चेष्यते।
देवता संगतिस्तत्र दुर्वलं च परं परम्।।

मन्त्रस्य तावद्विधायकत्वाल्लिङ्गवच्छ्रुतितो दौर्वल्यं भवेत्। (तन्त्र.वा.२.२.९) अधिकरण में कुमारिल भट्ट के निर्णयानुसार पाठ क्रम में मन्त्र भाग का ही प्रमाण अधिक है किन्तु प्रयोगावस्था में ब्राह्मण पाठ के अनुसार ही करने के लिए निर्णय किया गया है। पौर्णमास की प्रथमानुष्ठान के सन्दर्भ में समस्त याज्ञिक सम्प्रदाय मत प्राप्त होने से पौर्णमास याग का ही अनुष्ठान सब से पहले होता है। इस बात को अथर्ववेदीय मन्त्र भी प्रमाणित करता है।

पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु।
ये त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्घयन्त्यमी ते ना के सुकृतः प्रविष्टाः

(अ.७.८०.४)

इसलिए यदि अमावास्या को अग्न्याधान किया गया तो अग्रिम पूर्णिमा को पौर्णमासेष्टि से प्रारम्भ होगा। अगर पूर्णिमा को आधान सम्पन्न हुआ तो उसदिन से अग्निहोत्र प्रारम्भ हो जायेगा किन्तु अग्रिम अमावास्या को इष्टि न हो कर पूर्णिमा से ही प्रारम्भ किया जायेगा। मास का प्रारम्भ पूर्णिमा से ही होता है अत: यह भी एक कारण है। इन सभी प्रामाणिक तथ्यों से पौर्णमास याग पहले किया जाता है तत्पश्चात् दर्शयाग।

इष्टिकाल और उपवसथ

पूर्णिमा के दिन सायं आधान कर कृष्णप्रतिपदा के प्रात: पौर्णमासेष्टि किया जाता है। अमावास्या को आधान करने पर भी पहले पौर्णमास करके फिर दर्शेष्टि किया जाता है। सूत्रकार ने **सद्यो वा प्रात:** दो विकल्प दिये हैं। कुछ लोग चतुर्दशी को आधान कर दूसरे दिन पौर्णमास दर्शयाग करते हैं। तिथि क्षय होने पर ऐसा होता है। समान्यत: नहीं। **इष्टि के पूर्व दिन को उपवसथ कहते हैं।** करिष्यमाण याग में यक्ष्यमाण देवता, यजमान के घर आकर पूर्व दिन सायं काल से ही निवास करते हैं। अत: उसका नाम उपवसथ है। क्योंकि यक्ष्यमाण देवता पहले ही घर पर आ जाते हैं, अत: याग के पूर्वदिन सायंकाल यजमान को भोजनादि में संयम रखना पड़ता है। जिन हविओं को प्रात: देवताओं को देना होगा उसको न खाकर अन्य कुछ फल इत्यादि खाकर, गार्हपत्य आहवनीय के आसपास उच्चासन पर न सोना, ब्रह्मचर्य धारण करना आदि नियम पालनीय होते हैं।

ऋत्विक् परिचय

अध्वर्यु, ब्रह्मा, होता और अग्नीत् ये चार ऋत्विक् दर्श पौर्णमास याग में होते हैं। जबकि अध्वर्यु यजुर्वेदवेत्ता, अथर्ववेदी या चतुर्वेद वेत्ता ब्रह्मा, होता ऋग्वेदी होना चाहिए। अग्नीत् ब्रह्म गणीय ऋत्विक् होने से वह भी अथर्ववेद का ज्ञाता होना चाहिए फिर भी इष्टि सम्पादनार्थ किसी

वेद का वह ज्ञाता हो अगर प्रयोगाभ्यास किसी ऋत्विक् कर्मका है तो वह आर्त्विज्य कर सकता है। **नियतेसामान्यतः प्रतिनिधिः स्यात्, आरम्भान्नियमः दोषश्चासमाप्तौ स्यात् सामान्यात्।** (का.श्रौ.सू. १.४.२—४) यद्यपि ये सूत्र विहित द्रव्यपरक हैं तथापि आनुषंगतः इस समस्या के मार्ग दर्शक भी प्रतीत होते हैं।

होता— एक ऋत्विक् है। जो कि याज्या, पुरोऽनुवाक्या (देवता आवाहन एवं स्तुति) ऋग्वेदीय मन्त्रों से करता है। वेदि के पश्चिम उत्तर श्रोणि के निकट इसके बैठने का स्थान है।

अध्वर्युः— श्रौतयागों का प्रमुख ऋत्विक् यजुर्वेदी होता है। यागारम्भ से समाप्ति तक इसी का कार्य सर्वाधिक होता है।

अग्नीत्— ब्रह्मगणीय यह ऋत्विक् है। स्फ्य हाथ में तलवार जैसे उद्यत रखकर अध्वर्यु के आश्रावण के पश्चात् उत्करसमीप खड़े होकर जो प्रत्याश्रावण करता है वह अग्नीत्/आग्नीध्र नामक ऋत्विक् है।

ब्रह्मा— एक ऋत्विक् है। अथर्ववेदी अथवा चारो वेदों के ज्ञाता होता है। श्रौत याग को यथा विधि सम्पादन करवाने में इसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व होता है। अनुष्ठान क्रम भंग हो जाने पर या कोई चीज टूट जाने पर या गिर जाने पर यह प्रायश्चित्त को बताता है। कुछ प्रमुख कार्य के लिए इससे अनुमति मांगनी पड़ती है।

याग और होम का भेद

याज्ञिक परिभाषा के अन्तर्गत याग और होम में अन्तर माना गया है। जहाँ खडे होकर याज्या पुरोऽनुवाक्या के साथ बषट् कार से आहुति दी जाती है **वह याग है**।

जहाँ बैठ कर मन्त्रपाठ के बाद स्वाहाकार से आहुति दी जाती है उसको **होम कहते हैं।** याग और होम में यही भेद हैं। (वचनादन्यत् प्रयोगविशेषको बोध कराता है।)

व्रतग्रहण में विकल्प

सम्पूर्ण इष्टिकाल में व्रतग्रहण करने के चार पक्ष बताये गये हैं।

क्योंकि व्रत ग्रहण के बाद, सत्यवदन, क्रोध अकरण आदि नियम पालनीय होते हैं। अत: तावत्काल पर्यन्त यम नियम में रहना आवश्यक होने से यजमान की सुविधानुसार व्रतग्रहण करने के लिए चार वैकल्पिक पक्ष बताये गये हैं।

(१) इष्टि प्रारम्भ काल। (का.श्रौ.सू. २.१.११)

(२) ब्रह्मवरण के बाद। (का. श्रौ.सू.२.२.५)

(३) अन्वाहार्य पात्र श्रपण के बाद। (का.श्रौ.सू.२.५.२८)

(४) कपाल एवं हवि उद्‌वासन के बाद (का.श्रौ. सू. २.८.२१)

वैकल्पिक कर्म

इष्टि में कुछ वैकल्पिक कार्य होते हैं, जिनको यहाँ जानकारी के लिए एकत्र प्रस्तुत किया जाता है।

(१) पात्रासादन करता है– यजमान/ अध्वर्यु (का.श्रौ.सू. २.३.२)

(२) पात्रासादन में दिक् और स्थान—पात्रासादन गार्हपत्य के पश्चिम अथवा उत्तर तरफ या आहवनीय के पश्चिम अथवा उत्तर तरफ करना चाहिये। पात्रासादन प्राक्‌संस्थ अथवा उदक् संस्थ होना चाहिये। (का.श्रौ.सू. २.३.९)

(३) हविष्कुट्टन—यजमान की पत्नी करेगी अथवा और अन्य कोई अर्थात् आग्नीध्र भी कर सकता है।

(४) आज्यावेक्षण—यजमान अथवा अध्वर्यु करता है। (का.श्रौ.सू. २.७.८)

(५) वेदिपरिस्तरण—प्रागन्त/प्रत्यगन्त दोनों पक्ष हैं, परन्तु प्रागन्त पक्ष सम्प्रदाय प्रसिद्ध है।

एक साथ किये जानेवाले कर्म

इष्टि में एक साथ किये जानेवाले कर्म अनेक जगह है। उनमें से उदाहरण के लिए मात्र तीन को यहाँ प्रस्तुत कर रहें हैं। बाकी पद्धति के अन्दर यथा स्थान दिया गया है।

(१) पेषण—उपधान—आज्यनिर्वाप—एक साथ होता है।

(२) अग्नीत् हविपेषण करता है। अध्वर्यु कपालोपधान करता है।

(३) ब्रह्मा आज्य निर्वाप करता है। ये तीन कार्य एक साथ होते हैं।

विविध ज्ञातव्य

१. प्रणीता एवं उत्कर के बीच इष्टि में संचर मार्ग होता है। (का.श्रौ.सू.२) संचर अर्थात् ऋत्विजों के आने जाने का मार्ग।

२. पूर्वाग्र रस्सी बिछा कर उस पर उत्तराग्र समिध रखकर बाँधना चाहिए। अगर उत्तराग्र रस्सी बिछाया तो, पूवार्ग्र इध्म रख कर बान्धना चाहिए एवं इस प्रकार से खोलना चाहिए।

३. घृत के साथ वेद कुश का ग्रहण होता है। स्फ्य का नही। स्फ्य लेकर घृत पात्र या घृताहुति नहीं दी जाती है।

४. रुद्र राक्षस, असुर, पितृ देवताक मन्त्र उच्चारण करके तथा अभिचार सम्बन्धी मन्त्रोच्चारण के बाद, अपने आपको स्पर्श कर हाथ से **जल का स्पर्श करें**। (का.श्रौ.सू.१.१०.१४)

५. याग में यूपछेदन, धान कूटना, गड्ढा खोदना (वेदी बनाना) शाखा छेदन करना आदि कर्म तैयार कर रख दिया जाता है। और समय आने पर इन्हें समन्त्रक यथा विधि संस्कृत कर दिया जाता है। याग के अन्तर्गत करने पर याग नियत काल में सम्पन्न नहीं हो पायेगा। अतः इन को पहले तैयार कर रखना शास्त्रसम्मत है। अध्वर्यु कर्तृक ये सारे कर्म होने से इन्हें यजुष्क्रिया भी कहा जाता है। (का.श्रौ.सू. १.१०.१३)

६. स्रुवादिमार्जन—स्रुवादि पात्रों का मार्जन अध्वर्यु गार्हपत्य खर में प्रतपन करने के पश्चात् अग्नीत् को पकड़ा देता है। अग्नीत् उनको उत्कर के पूर्व या पश्चिम में कुश पर रखते जाता है। अथवा वेदि पर उत्तराग्र रखी प्रोक्षणी (अग्निहोत्र हवणी) के साथ रखता। यही पक्ष मेरे गुरु परम्परा में भी है।

७. वेदिस्तरण—बर्हिसन्नहन वेदि पर विछाने के बाद उसपर बर्हि भी बिछाना होता है। उसकी तरीका यह है कि अगर बर्हिसन्नहन को पूर्वाग्र बिछाया गया हो तो कुशों को उसपर उत्तराग्र बिछाया जायेगा। अगर उत्तराग्र सन्नहन को बिछाया गया तो पूर्वाग्र कुशों को उस पर बिछाया जायेगा। बर्हिसन्नहन पर बिछाये जानेवाले कुश पात्रासादन क्रम में **सन्नहनावच्छानानि** करके इसके निमित्त पहले से ही रखा गया है। उन्हीं को लेकर बर्हि सन्नहन पर बिछाना चाहिए।

८. अग्नि में पका हुआ पुरोडाश को खर से बाहर निकालने के लिए पद्धितिकरों ने प्राय: काष्ठाद्युपायेन लिखा है किन्तु मैंने इस पद्धति में वस्त्राद्युपायेन शब्द का प्रयोग किया है। कारण दो लकड़ी के द्वारा अगर पुरोडाश को निकाला जाता है तो गिर जाने की सम्भावना रहती है। हवि गिर कर कुछ नुकसान होने से प्रायश्चित्त लगता है। अत: मैने वस्त्रादि शब्द का प्रयोग किया है। (पृ.४४) वस्त्र से तात्पर्य कोई परिधानवस्त्र नहीं। कोई नया वस्त्र या यज्ञ कार्य के लिए व्यवहृत वस्त्र को गीलाकर ठीक से निचोड़ कर उससे पुरोडाश को खर से बाहर निकालें। सम्प्रदाय में भी प्राय: इसी प्रकार ही होता है।

दर्शपौर्ण मास याग में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का विवरण

उद्धरण— गार्हपत्य से आहवनीय और दक्षिणाग्नि खर में संकल्प पूर्वक अग्नि को लेकर स्थापना करना।

खर— आहवनीयादि अग्निओं की आधारभूत क्षेत्र को खर कहते हैं। कुण्ड और खर में यही भेद है कि—कुण्ड जमीन खोदकर मेखलात्रय युक्त बनाया जाता है। परन्तु खर जमीन पर परिधि डाल कर बनाया जाता है।

अग्न्यन्वाधान– गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि में **ममाग्ने०** मन्त्र से समिधाओं का आधान रूप कर्म।

प्रणीता प्रणयन–वारणकाष्ठ निर्मित पात्र में जल भर कर अपने स्थान में रखना प्रणीता प्रणयन कहलाता है। (प्रणीतानां स्वस्थाने स्थापनं प्रणीता प्रणयनम्) (स्थान–आहवनीय के उत्तर)

परिस्तरण– आहवनीयादि खरों के चारों तरफ कुशों को बिछाना। **तृणैरग्नीन्परिस्तीर्य** (का.श्रौ.सू.–२.३.६)

प्राक् संस्था/उदक् संस्था–संस्था शब्द याज्ञिक सम्प्रदाय में समाप्ति वाचक है। पश्चिम से प्रारम्भ कर पूर्व में समाप्ति को प्राक्संस्थ, तथा दक्षिण से प्रारम्भ कर उत्तर में समाप्ति को उदक् संस्थ कहते हैं।

पवित्र– कुश लक्षण युक्त दो कुशों को पवित्र कहते है। **पत्रद्वयात्मकं प्रोक्तं प्रादेशं च पवित्रकम्** (य.पा., श्लो.१) **कुशौ समाव प्रशीर्णाग्रावनन्तर्गर्भौ कुशैश्छिनत्ति** (का.श्रौ.सू.–२.२.३०)

उत्पवन– पवित्र के दोनों छोर को दोनों हाथ में पकड़ कर जल में या घृत में डाल कर उठाना। **ताभ्यामुत्पुनाति।**

(का.श्रौ.सू.२.३.३२)

बर्हि– बर्हि: कुश को कहते हैं, **कौशं बर्हि:** (का.श्रौ.सू.–१.३.१२) वेदि में बर्हि संज्ञक कुश बिछाये जाते हैं।

उपांशु– मुख के भीतर हुई उच्चारण क्रिया को उपांशु कहते हैं। **मुखप्रयत्नवाननभिव्यक्तशब्द उपांशु:।**

विधृती– वेदि पर बिछाये बर्हि पर उत्तराग्र दो कुश बिछाये जाते हैं, उनको विधृती कहते हैं।

प्रस्तर– वेदि कुशों पर उत्तराग्र बिछाये गये विधृति संज्ञक दो कुशों पर, पूर्वाग्र स्थापित कुशमुष्टि चतुष्टय को प्रस्तर कहते हैं। (का.श्रौ.सू. २.८.१०)

परिधि— यज्ञीय वृक्ष सम्बन्धी एक हाथ लम्बा तीन लकड़ी को परिधि कहते हैं।

इध्म— पालाश आदि यज्ञीय काष्ठ अरत्नि प्रमाणक १८ संख्या को इध्म कहते हैं।

समिधा— अग्नि प्रज्वलनार्थ प्रादेश मात्र पर्याप्त शुष्क काष्ठों को समिधा कहते हैं।

वेद— कुशमुष्टि विशेष को वेद कहते हैं। आज्य ग्रहणादि में इसको साथ रखा जाता है।

उपसर्जनी— आटा सानने के लिए गार्हपत्य में किया गया गरम जल।

इध्मसन्नहन— इध्मकाष्ठों को बान्धने के लिए वेण्याकार निर्मित रस्सी।

यजति/ जुहोति—वेदि के उत्तर दिशा में स्थित संग्रह (अर्धचन्द्राकार स्थान) को जुहोति तथा दक्षिण दिशा में स्थित संग्रह को यजति कहते हैं।

उत्कर:— उत्तर संग्रह के साथ तीन अंगुल वृत (छ: अंगुल विस्तार) एक अंगुल गढ्ढावाला गर्त। वेदी झाड़ कर जहाँ धूल आदि गिराये जाते हैं।

कपाल— मिट्टी से निर्मित घोडे के टापु के बराबर वृत्त को शास्त्रीय नियमानुसार (अधिकं दक्षिणत: आदि) भाग कर बनाये गये टुकुड़े। जिन को पहले से ही अग्नि में पका कर तैयार रखा जाता है। और जिन को समन्त्रक अग्नि में स्थापित कर उस पर पुरोडाश रख कर पकाया जाता है।

पुरोडाश— गूंदी हुई पिसान से निर्मित बिल्वाकार पिण्ड।

प्रैष— बिना मांगे आदेश देना प्रैष वाक्य है।

अभिधारण— घी से गीला करना।

पत्नीसन्नहन— पत्नी के कमर में बाधने के लिए मूंज की रस्सी। इसे योक्त्र भी कहते है।

आश्रावण— अध्वर्यु द्वारा उच्चरित ओ३श्रावय आदि शब्द।

प्रत्याश्रावण— अध्वर्यु कर्तृक ओ३ श्रावय के बाद अग्नीत् द्वारा उच्चरित अस्तु और श्रौ३ षट् शब्द।

याज्या— ये ३ यजमाहे आदि मन्त्रभाग को याज्या कहते हैं। (जिसके साथ अन्त में बौषट् लगता है और बषट्कार के साथ अध्वर्यु आहुति देता है।)

आघार— अग्नि में एक स्थान से लेकर दूसरे स्थान तक समन्त्रक घृतपातन

स्तम्बयजुर्हरण—यह क्रिया विशेष है। जहाँ वेदी बनाना है वहाँ उत्तराग्र एक तृणरख कर, अध्वर्यु का समन्त्रक उस पर स्फ्य से प्रहार करना (१) प्रहार से खोदी मिट्टी को समन्त्रक उठाना (२) समन्त्रक वेदी स्थान को देखना (३) हाथ में उठाई गई मिट्टी को समन्त्रक उत्कर में फेंकना (४) कुश पर प्रहार क्रम दक्षिण से प्रारम्भ कर उत्तर के ओर बढ़ना। इस प्रकार तीन आवृत्ति के पश्चात् अन्त में चतुर्थ आवृत्ति में कुश को भी उठा कर उत्कर में डाल देना होता है। इस समस्त प्रक्रिया को स्तम्बयजुर्हरण कहते हैं।

हरत्रिः— कर्म का नाम। अध्वर्यु स्तम्बयजुर्हरण के बाद वेदि पर स्फ्य से पश्चिम से पूर्व तीन रेखा कर, हरत्रिः कहता है अग्नीत् उनके मिट्टी को उत्कर में फेंक कर जल से लीप देता है। (का.श्रौ.सू. २.६.१९)

शंयुवाक— पत्नी संयाज इडान्त या शंयुवाकान्त होता है। तच्छंयोरा० मन्त्र को होता जहाँ पढ़ता है। वह शंयुवाक कर्म है।

प्रयाज— प्रधानयाग से पूर्व किये जानेवाला याग। १. समिधोयज, २. तनूनपातं यज, ३. इडो यज, ४. बर्हिर्यज ५. स्वाहाकारं यज ये पांच प्रयाज हैं।

अनुयाज— प्रधानयाग के अनन्तर किये जाने वाला याग। १. बर्हि,

२.नराशंस, ३. स्विष्टकृत्, ये तीन अनुयाज है।

सामिधेनी— अग्नि को प्रदीप्त करने के लिए होता द्वारा पठ्यमान १५ऋक्।

स्रुग्व्यूहन— यथास्थान स्थित जुहू को पूर्व के ओर और उपभृत् को पश्चिम के ओर खिस्काना स्रुग्व्यूहन कर्म है।

अवदान— भाग लेना। भाग करना। (पुरोडाश से या आज्यस्थाली से)

अन्वाहार्य— दक्षिणाग्नि में पकाया गया—चार ऋत्विजों के भोजन निमित्त अन्न। (यह दर्शपौर्ण मास की दक्षिणा भी है।)

प्रधान याग— कर्म के प्रधान देवता के लिए किया जाने वाला याग पौर्णमास में (१) आग्नेय अष्टकपाल पुरोडाश (अग्नि देवता) (२) अग्नीषोम उपांशुयाग घी से। (३) अग्नीषोमीय पुरोडाश याग। ये तीन देवता हैं।

स्विष्टकृत्— कर्म की पुष्कलता व पूर्णता के निमित्त किया जानेवाला याग।

सूक्तवाक्— **इदं द्यावा पृथिवी** आदि मन्त्र विशेष।

स्रुगादान— बाये हाथ में वेदकुश लेकर, आज्यपूर्ण स्रुची को वेदि पर रखना।

निगद— "अग्ने महाँ२।। असि ब्राह्मण भारत" इत्यादि वाक्य तथा प्रैषात्मक "अग्नीदग्नीन् विहर (श.ब्रा.—४.२.५.११) वाक्य को भी निगद कहते हैं। ऋचों यजूँषि सामानि निगदा मन्त्राः (का.श्रौ.सू. १.३.१)

निर्वाप— (परिमाण से) निकालना/ लेना।

पत्नीसंयाजः— एक कर्म है। जिस में सोम, त्वष्टा, देवताओं की पत्नी एवं अग्नि गृहपति इन के लिए आहुति दी जाती है।

प्राशित्रावदानम्— प्राशित्रहरण एक पात्र का नाम है। उस में लिया गया (अवदान) भाग को प्राशित्रावदान कहते हैं।

आतञ्चन— दूध को दही बनाने की क्रिया को आतञ्चन कहते हैं।

सान्नाय्य— दूध और दही का सम्मिश्रण को सान्नाय्य कहते हैं।

योक्त्र— मूँज को बाँटकर वेण्या कार निर्मित रस्सी

व्याममात्रं तु योक्त्रं स्यान्मौञ्जं वै त्रित्रिवृद्वतम्।

स्वत्रृषिग्रन्थिसंयुक्तमन्ते पाशद्वयं भवेत्। (य.पा.श्लो.७६)

पूर्णपात्रनिनयन—यज्ञकाष्ठनिर्मित जलपूर्णपात्र को यजमान की अंजलि में अध्वर्यु द्वारा गिराया जाने को पूर्णपात्र निनयन कहा जाता है। (३.५.८)

विष्णुक्रमण— समन्त्रक दक्षिण श्रोणी से तीन कदम (दाहिने पैर आगे रखते हुए) यजमान द्वारा संक्रमण(आगे बढ़ना)

पुरोऽनुवाक्या— याग के समय यक्ष्यमाण देव के निमित्त मन्त्रपाठ के लिए अध्वर्यु होता को प्रैष देता है। होता द्वारा क्रियमाण मन्त्र पाठ को पुरोऽनुवाक्या कहते है।

याज्या पुरोऽनुवाक्या का भेद

मुख्यतः पुरोऽनुवाक्या से आवाहन, याज्या से हविर्दान होता है।

	पुरोऽनुवाक्या		याज्या
१.	द्युलोकरूपा।	१.	पृथिवी रूपा।
२.	बृहद्रूपा।	२.	रथन्तररूपा।
३.	शनैरुच्यते। (धीरे बोला जाता है)	३.	क्षिप्रमुच्यते। (जल्दी बोला जाता है)
४.	गायत्री छन्दस्का	४.	त्रिष्टुप् छन्दस्का।
५.	हुवे, हवामहे, आगच्छ, इदं हविरावृधाय स्वाद्धि पिव, प्र इत्यादि शब्दवती।	५.	बीहि, हविर्जुषस्व,वर्हि सीद, इत्यादि शब्दवती
६.	पुरस्ताल्लक्षणा।	६.	उपरिष्टाल्लक्षणा

७. प्रथमपदे देवताभिधाना   ७. उत्तमपदे देवताभिधाना।

ये सब विवरण—श.ब्रा. १.५.५.१५—२० के अन्दर वर्णित है।

यज्ञपात्र परिचय

अग्निहोत्र हवणी—इस से अग्निहोत्र किया जाता है। विकंकत काष्ठनिर्मित हंस मुख आकार वाली इस पात्र को इष्टि के समय प्रोक्षणी के रूप उपयोग किया जाता है। इसमें स्थित जल से दोनों पवित्र से आसादित पात्रों का प्रोक्षण होता है। इस के ऊपर कोई चिन्ह नहीं दिया होता है। चित्र सं० ११ देखें।

आज्यस्थाली—घी रखने का बर्तन। पित्तल/कांसा/मिट्टी का होना चाहिए। इस में से होम के लिए घी को लिया जाता है। देखे चि. सं.—३२

इडापात्री— वारणकाष्ठनिर्मित एक अरत्नि लम्बी, छे अंगुल चौड़ी, दो अंगुल गड्ढी मध्य में संकुचित, चार अंगुल दण्डवाली, इडा संज्ञक भाग का आधार पात्र होने से इडापात्री कहते है। देखें चित्र सं०—१७

उपभृत्— पीपल काष्ठ से निर्मित अग्निहोत्र हवणी सदृशाकार। याग के समय जुहू के समीप धारण किये जाने से इसको उपभृत् कहते हैं। (उप समीपे स्थिते धार्यते जुह्वाः इत्युपभृत्) वस्तुत अग्निहोत्र हवणी जुहू, उपभृत् एवं ध्रुवा ये चार पात्र एक रूप वाले होने से प्रयोगावस्था में इनके पहचान के लिए याज्ञिक सम्प्रदाय में कुछ चिन्ह किये हुए होते है। वह इस प्रकार है कि—(पात्रों के दण्ड के उत्तम्भन स्थान के ऊपर) अग्निहोत्र हवणी पर कोई चिन्ह नहीं होता है। जुहू पर। उपभृत् पर॥ और ध्रुवा पर॥। चिन्ह होता है। **स्रवते इति स्रुक्** इस व्युत्पत्ति से स्रुव सहित इन चार पात्रों की स्रुक् संज्ञा है। सामान्य स्रुक् शब्द के प्रयोग से प्रकरण

के अनुसार पात्र ग्रहाणादि का निर्धारण होगा। अतः पद्धति में सामान्यतया केवल स्त्रुक् शब्द का प्रयोग न करके निश्चयार्थ बोध के लिए पात्रनाम ग्रहण प्रायः पद्धति कार करते हैं। यदि ऐसा कहीं नही हुआ है तो वहाँ प्रकरणानुसार पात्र की ग्रहण निश्चय किया जाता है। उभृत् चित्र सं.–१३

जुहू– यह पलाश काष्ठ निर्मित उपभृत् जैसा पात्र है। चित्र सं०–१२ देखें–

ध्रुवा– विकङ्कत काष्ठ निर्मित उपभृत् के ही रूप बाला है। देखें चि०सं०–१४

उपवेष/धृष्टि–कपालोपधानार्थ अंगारों को जिस पात्रविशेष से हटाया जाता है। देखें चि० सं०–७, ८

उलूखल, मुसल–धान कुटने का साधन द्वय। अलूखल धान्याधार। मुसल प्रहार साधन। देखें चि०सं०–९, १०

दृषद्–उपल– पेषण साधन। सिलवट लोढा। चित्र सं.–२८, २९

प्राशित्रहरण– हवि रखकर ब्रह्मा को दिया जाने वाला पात्र है। वारण काष्ठनिर्मित पांच अंगुल लम्बा चार अंगुल चौड़ा, दो अंगुल गढ्ढा वाला होता है। एवं दो अंगुल डण्डा भी होता है। इस पात्र के अनुरूप एक ढक्कन भी होता है। चि० सं० – २१ (य० पार्श्वे, श्लो १२२)

अरणी– यह अग्नि प्रकट करने का एक यंत्र है। इसके पांच अवयव हैं। अधरारणि, उत्तरारणि, मन्था रस्सी एवं ओबिली। अधरा रणि शमीगर्भ अश्वत्थकाष्ठ से ही होता है। अनुपलब्ध होने पर केवल शमी से ही होता है। इस प्रकार उत्तरारणि भी होता है। उत्तरारणि काष्ठ से काट कर एक कील जैसा मोटा काष्ठ मन्था के अधोभाग में लगाकर ऊपर से ओबिली साधन से दवाकर रखा जाता है। और मन्था में रस्सी लपेट

कर खींचते हुए मन्थन किया जाता है। ओबिली बारह अंगुल लम्बी कोई यज्ञिय वृक्ष से या शमी से होना चाहिए। (य.पार्श्वे श्लो–४१) मन्थ का काष्ठ भी इसी प्रकार होता है। मन्थ भी १२ अंगुल का होता है। चित्र सं० देखें–१–५

शम्या– खादिर काष्ठनिर्मित छत्तिस अंगुल लम्बा अंगुष्ठ मोटा अग्रभाग नोकिला पात्र विशेष। हवि: पेषण के समय शील के नीचे उत्तराग्र रखा जाता है। देखें चि० सं०–१६

श्रृतावदान– वारणकाष्ठनिर्मित प्रदेशमात्र (पल्टा/खुरपी के आकार) पुरोडाश में अवदान चिन्ह करने के लिए तथा अवदान लेने के लिए उपयोग में लाया जाता है। देखें चि०सं०–३०

पुरोडाशपात्री– अग्नि में परिपक्व होने के बाद दोनों पुरोडाशों को दो पुरोडाश पात्री पर रखा जाता है। यह वारण काष्ठ निर्मित चतुरस्र चार अंगुल दण्ड युक्त मध्य में वृत्ताकार किञ्चिद् खोदी हुई (गढ्ढावाला) पात्र है। (य.पा.श्लो ११९, १२०) देखें चि०सं०–२२

प्रणीता– वारणकाष्ठनिर्मित बारह अंगुल लम्बी, छे अंगुल चौड़ी, चार अंगुल गढ्ढी, दो अंगुल दण्ड वाला पात्र है। यागारम्भ में जल भर कर प्रणयन किया जाता है। (य.पा. २६–१२७) देखें चि०सं०–२४

शकंट– हविग्रहण स्थान बिना बैल युक्त (लडिया) बैलगाडी। यहाँ से हविग्रहण विधि से हविग्रहण किया जाता है। इस के अभाव में इडापात्रीवाला पात्र में हवि रख कर उस के नीचे उन्तराग्र स्फ्य को रख कर (धूरिषारोहणानि पात्रिबिले जपति) हविग्रहण में प्रयुक्त मन्त्रों को स्पर्शकर जप किया जाता है। देखें चि० सं०–३४

स्रुव– खादिरकाष्ठ निर्मित अरत्नि लम्बा, अंगुष्ठापर्व के बराबर

वृत्तगढ्ढा वाला आहुति प्रदान साधनभूत पात्र है। देखें चि०सं०—१८

होतृसदन— वारणकाष्ठ निर्मित सर्वतः हस्तमात्र विस्तार उत्तर श्रोणि पर होता का बैठने का आसन है। देखें चि०सं०—२५

अन्तर्धानकट— वारणकाष्ठनिर्मित बारह अंगुल लम्बा छे अंगुल चौड़ा अर्धचन्द्राकार २ अंगुल डण्डा युक्त पात्र है। पत्नी संयाज के समय अध्वर्यु गार्हपत्य खर के पूर्व भाग में परिधि पर रखकर पत्नी संयाज करता है। देखें चि०सं०—३३

अभ्रि— वारणकाष्ठ निर्मित अरत्नि लम्बा अग्रभाग नोकिला वेदि खनन साधनभूत यज्ञायुध विशेष। चित्र सं.—१५

स्फ्य— (बज्र) खादि—काष्ठनिर्मित दोनों ओर धारबाला अग्रभाग नोकिला हस्तमात्र लम्बा यज्ञायुध। चित्र सं.—६

बर्हि— यज्ञवेदी में विछाये जानेवाले दर्भ समूह को बर्हि कहते हैं।

तृण संज्ञास्तु ये दर्भा एकपत्राः स्मृतास्तु ते।
ते बर्हिः संज्ञकादर्भा रत्निमात्राधिकाश्च ये।।

(य. पा. श्लो.१) चित्र सं.—२०

१. उत्तरारणी

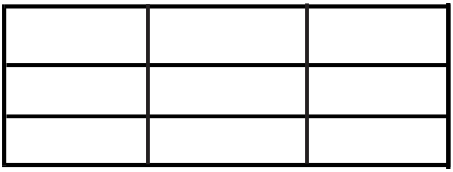

२. अधरारणी

३. नेत्र

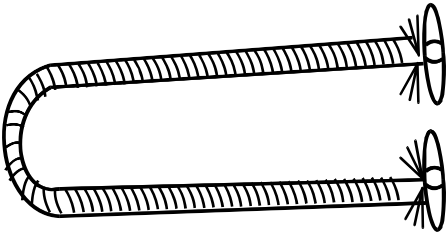

४. मन्थ

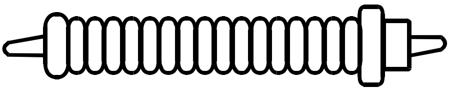

५. ओबिली

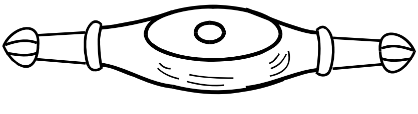

६. स्फ्य

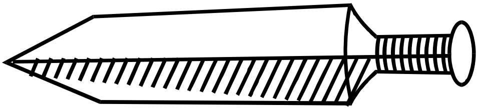

७. धृष्टि

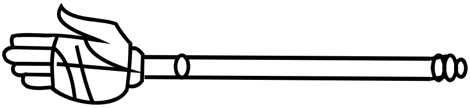

८. उपबेष

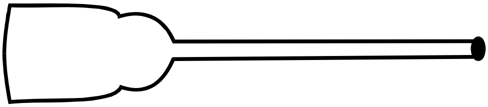

९. उलूखल

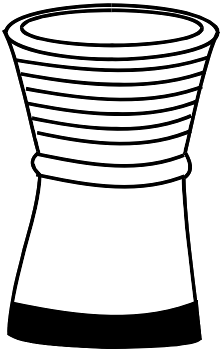

१०. मुसल

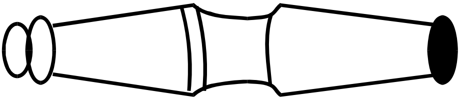

११. अग्निहोत्रहवणी

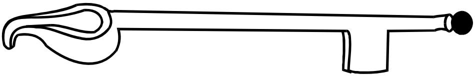

१२. जुहू

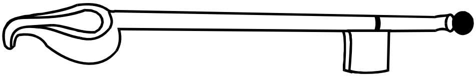

१३. उपभृत्

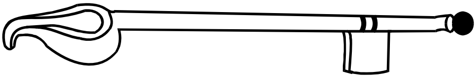

१४. ध्रुवा

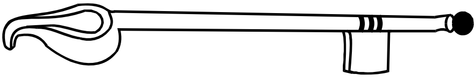

१५. अभ्रि

१६. शम्या

१७. इडापात्री

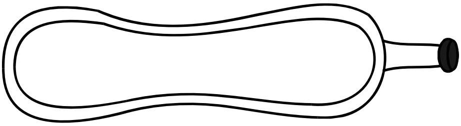

१८. स्रुव

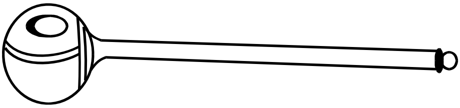

१९. इध्म

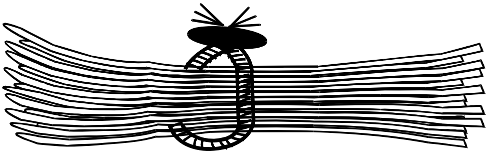

२०. बर्हि

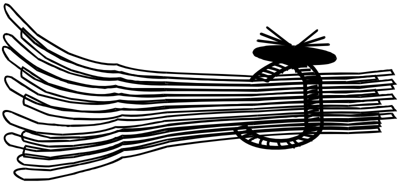

२१. प्राशित्रहरण

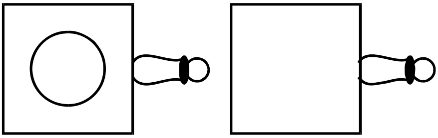

२२. पुरोडाशपात्री

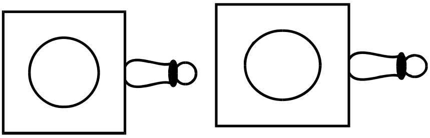

२३. षडवत्त

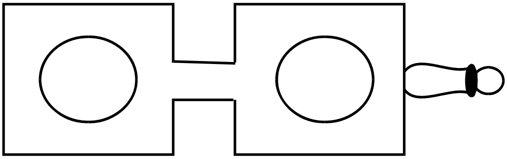

२४. प्रणीता

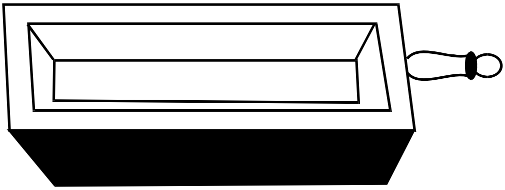

२५. होतृसदन

२६. शूर्प

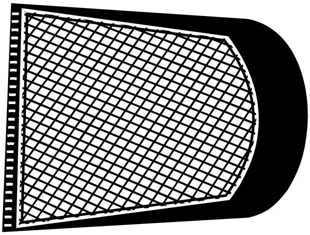

२७. कृष्णाजिन

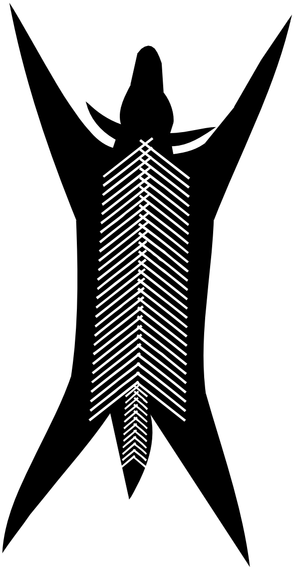

२८. दृषद्

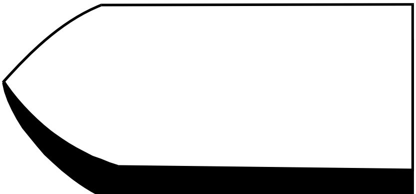

२९. उपल

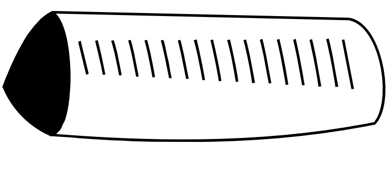

३०. श्रृतावदान 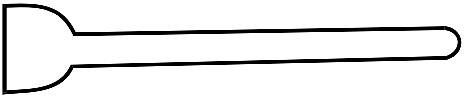

३१. शम्या

३२. आज्यस्थाली 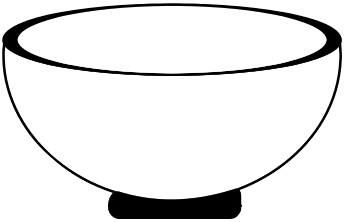

३३. अन्तर्धानकट 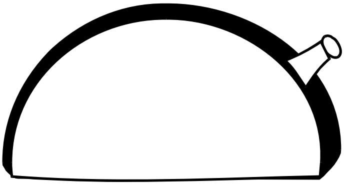

३४. शकट

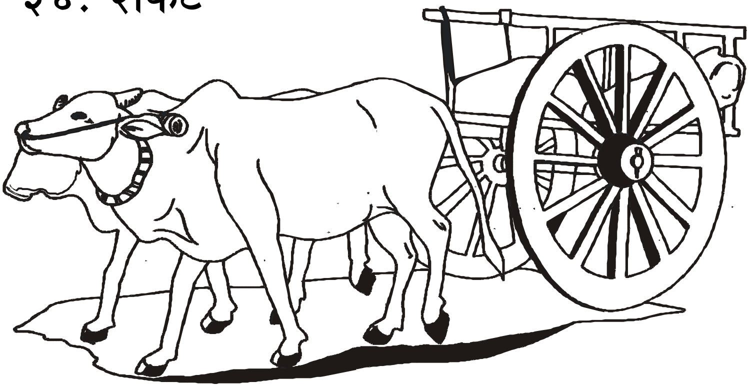

वैतानिक विवरण
इष्टि वेदि

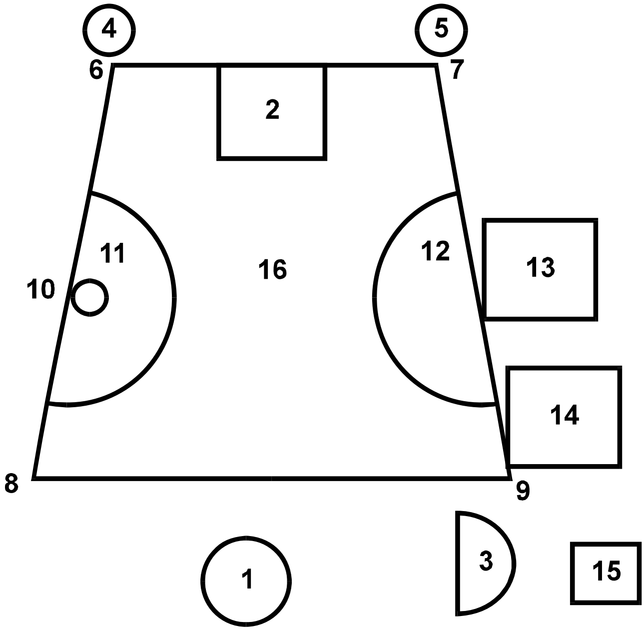

१. गार्हपत्य (मण्डलाकार)
२. आहवनीय (चतुरस्त्र)
३. दक्षिणाग्नि (अर्धचन्द्राकार)
४. आवसथ्य–(मण्डलाकार)
५. सभ्य– (मण्डलाकार)
६. उत्तरांस।
७. दक्षिणांस।
९. दक्षिणश्रोणि।
८. उत्तरश्रोणि।
१०. उत्कर।
११. जुहोति/ उत्तरसंग्रह।
१२. यजति/ दक्षिण संग्रह।
१३. ब्रह्मासन (वेदि को स्पर्श किया हुआ)
१४. यजमानासन (वेदि को स्पर्श किया हुआ)
१५. पत्नी का आसन।
१६. (तीन अंगुल गढ्ढा वाली) वेदि।

मानवाचक विवरण

प्रक्रम	—	१२ अंगुल
असं	—	वेदी के ईशान एवं अग्नि कोण को अंस कहते हैं।
श्रोणी	—	वेदी की नैऋत, वायव्यकोण को श्रोणी कहते हैं।
व्याम	—	प्रसारित बाहू प्रमाण।
वितान बिहार	—	श्रौतयज्ञशाला
अरत्नि	—	२४ अंगुल

दर्शवेदिनिर्माणे मतान्तराणि

अथ विभिन्नग्रन्थोक्तदर्शवेदिनिर्माणं संगृह्यते।

दर्शवेदिनिर्माणं संगृह्यते। अस्ति मण्डपकुण्डासिद्धिनामकः ग्रन्थः। यस्मिन् मण्डपकुण्डविषयप्रतिपादकाः विंशतिग्रन्थाः बहुभिराचार्यैः विरचिता एकत्रसंलिताश्च सन्ति। तत्र "कुण्डशुल्बकारिकाख्यो ग्रन्थोऽस्ति। यस्य प्रणेतुस्तत्र नामाङ्कनं नास्ति। ग्रन्थेऽस्मिन्नाचार्येण श्रौतवितानस्य विहरणमुपवर्णितं तदत्र प्रस्तूयते।

ब्राह्मीमविभ्रंशवतीं परीक्ष्य संशोध्य भूमिं सुसमां समुच्चाम्।
प्रागृह्य तस्या मनुलिप्यशालां कृत्वा निहन्याद् दृढ़माद्यशङ्कुम्।
प्राचीं ततः पूर्ववदुक्तरीत्या संसाध्यदेशे परितः प्रशस्ते।
नर्यस्य विश्वाब्धि गुणाङ् गुलादि व्यासार्द्धमित्या विलिखेत्सुवृत्ताम्।।२।।
तन्मध्यचिन्हाद्वसुविक्रमेषु वैकादशद्वादशसु स्वमत्या।
वांसस्य मध्यं परिकल्प्यकुर्यात् कुण्डं चतुष्कोणमरत्निमात्रम्।।३।।
मध्यं च नर्याहवनीययोस्तु विभज्य षोढाप्यथ सप्तधा वा।
लब्धांशकागंतुसमं त्रिधा भूस्त्र्यंशं च हित्वा परदक्षिणेऽग्निः।।४।।
अग्नेरुदक्सार्द्धनवाङ्गुलेऽस्मिन् यूकेषु भिर्वर्धितभूस्थशङ्कौ
एकोनविंशाङ् गुलिभिर्यवैक यूकाद्वयव्यासदलेषु वृत्तम्।।५।।

विलिख्यपूर्वापरसंस्थजीवां कृत्वा च हित्वोत्तरकार्मुकं हि।
यामं भवेत् कुण्डमथर्य संज्ञं सभ्यं सभायां चतुरस्त्रमुक्तम्।।६।।
औपासनं चैवमथोगृहान्तः कुण्डद्वयं नर्यमिवोक्तवद्वा।
उपर्यपर्यापितमेखला भिस्त्रिस्त्रिभिः सर्वखरेषु भित्तीः।।७।।

सूत्रोक्तद्वितीयपक्षमनुसृत्य एकादशप्रक्रमपक्षे वेदिः १/२९

वेदाङ् गुलोच्चारमितो विदध्याद्ध्रुवश्च तास्त्र्यंगुलिविस्तृताभिः।
प्राचीभवादाहवनीयशङ्कोः पश्चात्त्र्यरत्न्या प्रतिमुंच शङ्कुम्।।८।।
रज्जुं द्विपाशं षडरत्निदीर्घां विचिन्हितां पंचसु मध्यभागे।
हस्तद्वयं चागुलषट्कचिन्हें ह्यष्टादशेषु त्रिषुलक्षिता च।।९।।
पाशद्वयं सम्प्रतिमुच्यशङ्को र्विकर्षयेदङ्गुलषट्कचिन्हम्।
पाश्चात्यहस्तद्वयरज्जुचिह्ने शंकूच याम्योत्तरगौ निखेयौ।।१०।।
तच्छ्रोणियुग्मं त्वथपूर्वपाशं दष्टादशांकेन विकृष्य रज्जुम्।
अग्नीशयोरंसयुगं तथा स्याच्छङ्कुद्वयं सार्द्धकरस्य चिन्हे।।११।।
सूत्रार्पणात्कोणचतुष्टयेतु क्षेत्रं भवेत्तद्विषमं हि वेद्याः।
पूर्वार्धशंकोरथचापरार्द्धं यावच्च कोणोपरिवेष्ट्य रज्ज्वा।।१२।।
अर्द्धीकृता तामनुवेष्ट्यशकूं याम्योत्तरौ मध्यगमौ निखेयौ।
तुरीयभागेन दलीकृताया रज्जोः पृषत्कादथवापि शंकोः।।१३।।
वृत्तार्द्धमानेन विलिख्य संग्रहौ कृत्वा खनेत्त्र्यङ् गुलवेदिमध्यम्।
वितानपूर्वापरसौम्य दिक्षु द्वारैर्युतं शस्यगृहं पुरस्तात्।।१४।।
याम्येन्द्रदिग्द्वारगृहं द्वयोश्चश्वभ्रं च भस्मोद्धरणाय कुर्यात्।
एवं हविर्यज्ञविधौ वितानकुण्डानि साध्यानि समानि सद्भिः।।१५।।

कातीयानां दर्शपूर्मासविहारनिर्माणप्रकारः

गार्हपत्यस्य (प्रत्यक्स्थस्य) मध्यादाहवनीयस्य (प्राक्स्थस्य) मध्यपर्यन्तमन्तरमेकादश द्वादश वा प्रक्रमाः। प्रक्रमो द्वादशाङ्गुल इति परिशिष्टे। प्रक्रमः पदमित्यनर्थान्तरम्। गार्हपत्य कुण्डं सार्द्धत्रयोदशाङ् गुलमितकर्काटक

भ्रामणेन वृत्तं कार्यम्। आहवनीयस्यतु समचतुरस्रं तस्य व्यासविस्तृती चतुर्विंशांगुलमिते। गार्हपत्याहवनीययोर्मध्ये यवतीरज्जुस्तावत्या रज्ज्वाःषड् भागान्कृत्वा स्वषष्ठभागं तस्यां संयोजयेत्, एवं सप्तभागाः। ततः सप्तमभागसहितां रज्जुं त्रेधा विभज्य तृतीयांशद्वयेऽपि चिन्हं कृत्वा प्रान्तयोः पाशौ कृत्वा गार्हपत्यमध्यस्थितशङ्कौ आहवनीय मध्यस्थित मध्यशङ्कौ च पाशौ दत्वा, गार्हपत्यात्प्रथमचिन्हे दक्षिणास्यां कर्षिते तत्र चिन्हं कार्यम् (अयं दक्षिणाग्नि कुण्डमध्यः) तच्चिन्हादुत्तर भागे सार्द्धनवाङ् गुल प्रदेशे शङ् कुर्देयः। तत्र पूर्वापरा रज्जुर्देया। शङ्कुसकाशाद्यवाधिकैकोनविंशां गुलैर्भ्रमणं कार्य मुत्तरार्द्धस्य त्यागस्तेन अर्द्धचन्द्रकारो दक्षिणाग्निखरः सम्पद्यते।

आहवनीय मध्यङ्कोः सकाशात्पश्चिमस्यां त्र्यरत्निपरिमिते देशे शङ्कुर्देयः। तत्सकाशाद् दक्षिणस्यामुत्तरस्यां द्व्यरत्निपरिमितेदेशे शङ्कुर्देयः। आहवनीयमध्यशङकुसकाशात्सार्द्धरत्नि परिमितेदेशे दक्षिणत उत्तरश्च शङ् कुर्देयः। चतुर्षुकोणस्थ शङ्कुषु सूत्रार्पणाद्विषम चतुरस्त्रावेदिः सिद्ध्यति।

ततः प्राचीशङ्कुमारभ्यपश्चिमशङ्कुपर्यन्तं कोणद्वयवेष्टनेन सूत्रं प्रदाय तस्यार्द्धं कर्त्तव्यम्। अर्द्धपरिमितेन सूत्रेण प्राचीशङ्कुमारभ्याग्नेयस्थशङ् कुवेष्टनेन दक्षिणतः, एवमीशान कोणस्थशङ्कुवेष्टनेनोत्तरश्च शङ् कुः पृथक् पृथक् देयः। इदमेवसङ् ग्रहमध्यम्। ताभ्यां शङ्कुभ्यां दलीभूतरज्जुचतुर्थांशेन वेदिमध्ये सङ्ग्रहौ (अर्द्धचन्द्रकारौ) कार्यौ। तत्पश्चाद्द्वादशाङ् गुलमवशिष्टाभूमिः श्रोणिरित्यभिधीयते। पुरस्तादाहवनीयं यावदंस इत्यभिधीयते। तत आहवनीय मध्यात्प्रथमचिन्हे उत्तरस्यां कर्षिते तत्र चिन्हं कार्यम्। (अयमुत्करमध्यः)। तच्चिन्हात् त्र्यङ्गुलकर्कटकभ्रामणेन वृत्तमुत्करः कार्यः। अयं च द्व्यङ् गुलखातो भवति। तत अग्निकोणादारभ्य ईशान कोणपर्यन्तं वेद्यां संयोज्य (मिश्रयित्वा सार्द्धत्रिहस्ता वेदिः सम्पादनीया। सङ्ग्रहौ वर्जयित्वा वेद्यां सर्वत्र त्र्यङ्गुलः खातो विधेयः। कुण्डेषु मेखलाद्वादशाङ् दशाङ्गुलोच्चा चतुरङ् गुलविस्तार एकैव भवतीति

इति श्रौतपदार्थ निर्वचने, पृष्ट २ टिप्पण्याम्

कात्यायनीय शुल्बपरिशिष्टोक्तदर्शवेदिविहरणम्।

गार्हपत्यमध्यादहवनीयस्य मध्यपर्यन्तं मध्येऽन्तरमष्टौ एकादश, द्वादश वा पदानि। गार्हपत्यस्य मध्यत्वेन कल्पितं स्थानं केन्द्रं परिकल्प्य सार्द्ध त्रयोदशाङ्गुलिमितरज्ज्वा वृत्तं कार्यम्। इदं गार्हपत्याग्नेः स्थानम्। आहवनीयस्थानमायामतो विस्तारतश्च हस्तमितम्। गार्हपत्याहवनीयान्तरस्य द्वादशपदपरिमितत्वपक्षे तदन्तरस्य षड्ढस्तात्मकत्वात् षड्ढस्तां रज्जुं तदीय षष्ठभागेन हस्तात्मकेन संयोज्य, अर्थात् सप्तहस्तां रज्जुं गृहीत्वा, तस्या अन्तयोः पाशौ कृत्वा, मध्ये च तृतीये भागे चिन्हं कृत्वा एकं पाशं गार्हपत्यमध्यशङ्कौ आसज्ज्य द्वितीयपाशमाहवनीयमध्यशङ्कौ आसन्जयेत्। रज्जुमध्यवर्तिनोर्द्वयोश्चिन्हयोः पश्चिमचिन्हस्थाने रज्जुं गृहीत्वा दक्षिणत आकर्षयेत्, यत्र तच्चिन्हं पतति तत्र चिन्हं कृत्वा तस्मात्स्थानात् उत्तरतः सार्द्धनवाङ् गुलव्यवहितदेशे शङ्कुर्देयः। शङ्कुस्थानं केन्द्रत्वेन परिकल्प्य यवाधिकोनविंशत्यङ्गुलमितरज्ज्वा वृत्तं कार्यम्। वृत्तमध्ये केन्द्रसंलग्ना परिधि ापूर्वभागमादाय परिधिपश्चिमं यावत् सरलरेखा कार्या। रेखात उत्तरभागस्य त्यागः कार्यः। वृतस्य दक्षिणार्धं दक्षिणाग्निस्थानम्। पूर्वोक्तयोश्चिन्हयोः पूर्वचिन्हस्थाने रज्जुं गृहीत्वा उत्तरत आकर्षणे यत्र चिन्हं पतति तदुत्करस्थानम्। आहवनीयमध्यशङ्कुसकाशात् पश्चिमतस्त्रत्निव्यवहिते देशे शङ्कुर्देयः। आहवनीयप्राचीङ्कुसकाशात् सार्द्धरत्निव्यहिते देशे दक्षिणत उत्तरतश्च शङ्कुर्देयः। चतुर्षु कोणस्थशङ्कुषु सूत्रार्पणाद् विषमचतुरस्त्रं भवति। प्राचीशङ्कुमारभ्य पश्चिमशङ्कुपर्यन्तं कोणद्वयवेष्टनेन सूत्रं देयम्। तत्सूत्राध र्पिरिमितेन सूत्रेण प्राचीशङ्कुमारभ्य दक्षिणकोस्थ शङ्कुवेष्टनेन दक्षितः, उत्तर कोणस्थ शङ्कुवेष्टनेन उत्तरश्च शङ्कुर्देयः। ताभ्यां शङ्कुभ्यां पूर्वोक्तसूत्राध र्चितुर्थांशेन वेदिमध्ये सङ्ग्रहौ कार्यौ। द्वादशाङ्गुलं पदम्। अष्टयवमङ्गुलम्। चतुर्विंशत्यङ्गुलो हस्तः। इति वेद्यादिसाधनप्रकारः

(का.श्रौ.सू. २/६/१) टिप्पण्याम्

दर्शपौर्णमास विहार निर्माण प्रकार

अग्निस्थान निरूपण

जहाँ वेदिनिर्माण करना है, वहाँ दिशा निर्धारण के पश्चात्, पश्चिम दिशा में साढ़े तेरह (१३—१/२)अंगुल के एक रस्सी से वृत्तनिर्माण करे। यह गार्हपत्य का स्थान है। गार्हपत्य के केन्द्र बिन्दु से ग्यारह/ बाहर प्रक्रम नाप कर शंकु गाडे या चिन्ह करे।

अष्ट प्रक्रम से वेदी बनाना हो तो, गार्हपत्य के केन्द्र बिन्दू न नाप कर, उसकी सीधाई में पूर्वपरिधि पर बिन्दु देकर, आहवनीय के पश्चिम परिधि तक अष्टप्रक्रम मापना होगा, अन्यथा दक्षिणाग्नि विहरण के समय दक्षिणाग्नि वेदि के अन्दर पड जायेगी।

द्वादश प्रक्रम पक्ष को लेकर अग्नि स्थान निरूपण

गार्हपत्य के अभीष्ट शङ्कु से द्वादशप्रक्रम पूर्व को नाप कर आहवनीय का शङ्कु गाड दे। गार्हपत्य आहवनीय अन्तर्वर्ति रस्सी को छे भाग करने पर एक—एक भाग एक हाथ का होगा। उस छे हाथ की रस्सी के साथ एक हाथ रस्सी और बढ़ा कर सात हाथ वाला रस्सी बनावे। उसको तीन भाग करे। तीन भाग को भी समान दो भाग करे। इस प्रकार ७ हाथ वाली रस्सी में ६ चिन्हं सम्पन्न हुआ। रस्सी के दोनों छोर में पाश लगा कर आहवनीय और गार्हपत्य के अभीष्ट शङ्कु में फंसा कर (गार्हपत्य ओर की) तृतीय भाग के चिन्ह को पकड़ कर दक्षिण तरफ खींचे, जहाँ चिन्ह स्पर्श करे वहाँ शङ्कु गाड दे। वह दक्षिणाग्नि का केन्द्र बिन्दु है। फिर आहवनीय के ओर जो त्रिभाग वाला प्रथम चिन्ह उसको पकड़ कर उत्तर के ओर खींचे। जहाँ स्पर्श करे वहाँ एक शंकु गाड दे। वह उत्कर का स्थान है।

वेदिनिर्माण

गार्हपत्य का केन्द्र शङ्कु हमेशा गार्हपत्य का केन्द्र बिन्दु होगा।

परन्तु आहवनीय शङ्कु आहवनीय का तीन स्वरूप निरूपक है। वह है— वेद्यां सर्व:, वहि: सर्व:, वहिरन्तश्च भागत:।

अगर आहवनीय शङ्कु को आहवनीय का केन्द्र बिन्दु मान कर वेदिनिर्माण करते हैं तो आहवनीय का आधा वेदि के अन्दर और आधा वेदि के बाहर पड़ जाता है।

अगर आहवनीय शङ्कु को आहवनी के पूर्व सीमा सूचक मानते हुए वेदि विहरण किया जाता है तो वेदि के अन्दर पूरा आहवनीय नजर आ जाता है।

अगर आहवनीय खर शंकु को उसके पश्चिम शङ्कु माना जाता है तो वेदि से बाहार आहवनीय अग्नि पड़ जायेगा।

आहवनीय शङ्कु को खर के आदि मध्य, अन्त तीन स्थान मानने पर, सारा वेदि से बाहर आधावेदि में आधा बाहर, सारा वेदि के अन्दर होता है। अत: यहाँ सम्प्रदायानुसार सारा आहवनीय खर वेदि के अन्दर पक्ष को मान कर वेदि संरचना प्रस्तुत करते हैं।

गार्हपत्य केन्द्र बिन्दु से १२ प्रक्रम दूरी पर गाडा गया शङ्कु आहवनीय का पूर्वी शङ्कु माना गया। उस शङ्कु को केन्द्र मान कर वेदि संरचना करनी है। तदर्थ आहवनीय पूर्वी शङ्कु से पश्चिम के तरफ सीधे तीन अरत्नि नाप कर वहाँ एक शङ्कु गाडें। वहाँ से दो अरत्नि उत्तर एवं दो अरत्नि दक्षिण नाप कर शङ्कु गाडें। आहवनीय पूर्वी शङ्कु से डेढ अरत्नि उत्तर एवं डेढ अरत्नि दक्षिण दूरी पर दो शंङ्कु गाडें। इस प्रकार चार कोने पर चार शङ्कु गाड दिया गया। उनको रेखा से जोड़ देने पर एक विषमचतुरस्त्र बन जाता है। इससे वेदि की बाह्य सीमा निश्चित हुई।

संग्रह निर्माण

आहवनीय के पूर्वी मध्य शङ्कुं से वेदि पृष्ठ्या रेखा (रस्सी) के पश्चिम शङ्कु पर्यन्त (कोण द्वय वेष्टन पूर्वक) दक्षिणावर्त से रस्सी को फैलावे। उसको आधा करके दक्षिण एवं उत्तर फैलावे। जहाँ स्पर्श करे

वहाँ चिन्ह करे। दोनों संग्रहों के दो केन्द्र बिन्दु निष्पन्न हुआ। अर्धभाग के चतुर्थांश से केन्द्र बिन्दु से अर्घ व्यास भ्रामण करने पर संग्रह दो निष्पन्न होते हैं।

खरनिर्माण

सबसे पहले **गार्हपत्य** खर निर्माण—(वृत्ताकार गार्हपत्य)

गार्हपत्य केन्द्र बिन्दु से साढ़े तेरह अंगुल रस्सी से एक वृत्त निर्माण करने से सत्ताईस अंगुल का एक वृत्त निष्पन्न हुआ। अन्दर २७ अंगुल का हिस्सा छोड़ कर वृत्त परिधि से सटा कर चार अंगुल मोटा २४ अंगुल ऊँचा परिधि चार ओर से निर्माण करे। इससे गार्हपत्य कुण्ड निर्मित हुआ। सभी अग्निओं में खर प्रमाण के बाहर चार अंगुल मोटा २४ अंगुल ऊँचाई का परिधि लगाना है। जिस का जो स्वरूप वैसे।

आहवनीय—चतुरस्राकार (वर्गक्षेत्र)

पूर्वी शङ्कु से १२ अंगुल उत्तर, १२ अंगुल दक्षिण नापकर, फिर उत्तर और दक्षिण शंकु से पश्चिम के ओर एक—एक हाथ (२४ अंगुल) नाप कर चिन्ह करे, उत्पन्न चार शंकुओं को रेखा पात से जोड़े। इससे चारओर से २४ अंगुल प्रमाणवाला आहवनीयखर सम्पन्न हुआ।

दक्षिणाग्नि—अर्धचन्द्राकार

दक्षिणाग्नि के केन्द्र बिन्दु से उत्तर साढ़े नौ अंगुल दूरी पर (सीधाई में) एक शंकु दें। उस बिन्दु से पूर्व—पश्चिम साढ़े नौ अंगुल (९ १/२)अंगुल की रेखा बनावें। तथा केन्द्र बिन्दु से उस प्रमाण से ही एक वृत्त बनावें। इससे १८ अंगुल का वृत्त बना एवं मध्य रेखा से विभाजित भी हुआ। वृत्त का उत्तर भाग त्याग करने से दक्षिणाग्नि खर निष्पन्न हुआ। परिधि निर्माण पूर्ववत् करें।

उत्कर— इसका स्थान निरूपण पहले से कर दिया गया है। केन्द्र बिन्दु से तीन अंगुल रस्सी लेकर एक वृत्त बनाना होगा। यह वृत्त छः अंगुल का

निष्पन्न हुआ। इस वृत्त को एक अंगुल गढ्ढा बनाया जाता है। इस प्रकार उत्कर का स्वरूप निष्पन्न हुआ।

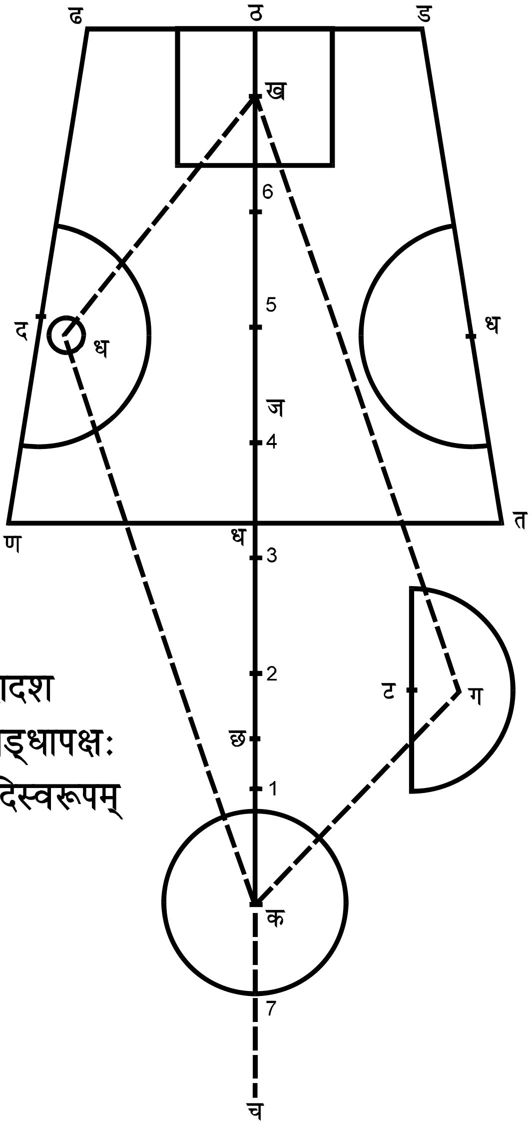

द्वादश प्रक्रमेषड्धापक्षः तत्र वेदिस्वरूपम्

वेद्यां सर्वः
एकादशप्रक्रमे षड्धापक्षः
तत्र वेदिस्वरूपम्

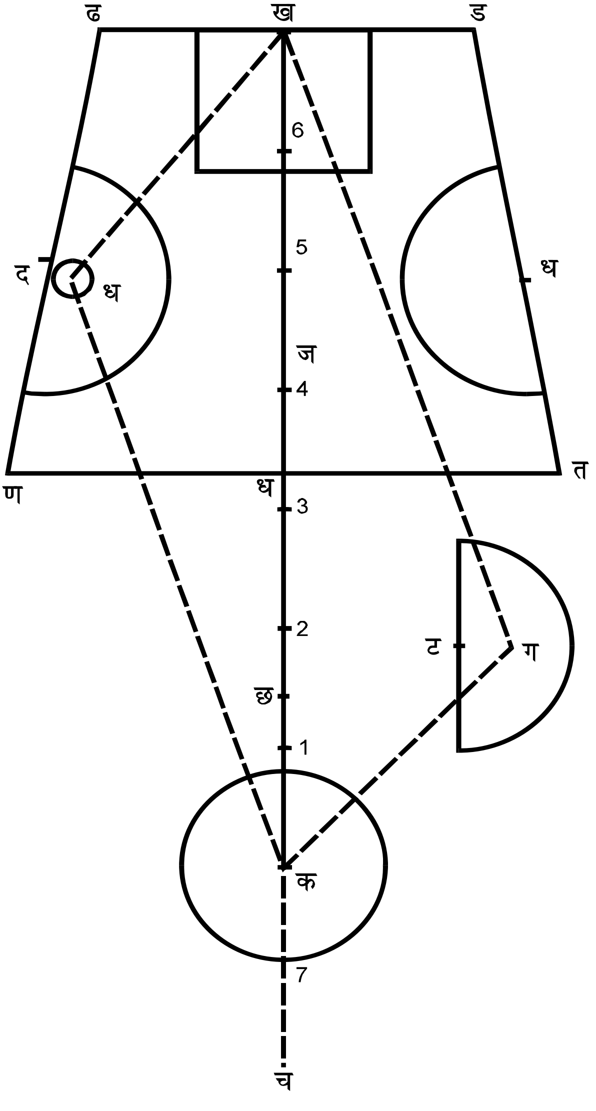

वेद्यां सर्वः

अष्टप्रक्रमे षड्धापक्षे वेदिरचना

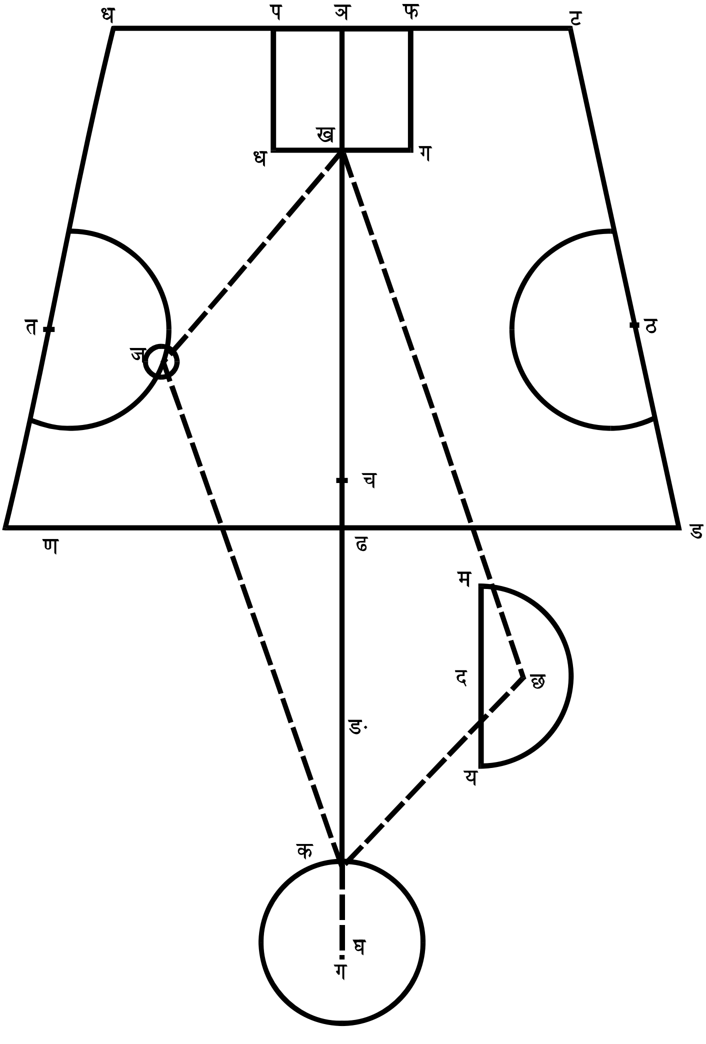

इष्टि—सम्भर:

१. शूप
२. कपाल
३. काला मृग चर्म—१
४. सिलवट लोढा—१
५. डेढ़ किलो चावल पकाने योग्य २ ढक्कन सहित एक टप।
६. ढक्कन रहित ३ टप
७. करछूल—१
८. साँडसी।
९. बाल्टी—१
१०. लोटा—२
११. बड़ी परात—१
१३. पंचुपात्री—४
१३. गिलास—४
१४. टोंटीदार गड़ू—१
१५. आसन—७
१६. चावल डेढ किलो
१७. आटा—१ किलो
१८. घी—एक किलो
१९. चीनी—५०० ग्राम
२०. सफेद कपड़ा—१ मीटर
२१. दूध—१ लीटर
२२. कपूर—१ पैकेट
२३. पत्तल—१०
२४. बड़ा मिट्टी का घड़ा—१
२५. गोइठा (सूखा गोबर)१०
२६. पत्तल—१०
२७. इघ्म—१८,
२८. परिधि—एक हाथ लम्बा एक ही—यज्ञीय वृक्ष का कच्चा चार होना चाहिए।
(यज्ञीय बृक्ष—पलाश, विकङ्कत, कष्मर्य, बिल्व, खादिर, उदुम्बर, काश्मरी (खंभारी)
२९. मूंज की रस्सी १० हाथ

विशेष—चित्रों में दिये गये सभी यज्ञोपकरण भी चाहिए।

अष्टकपाल:

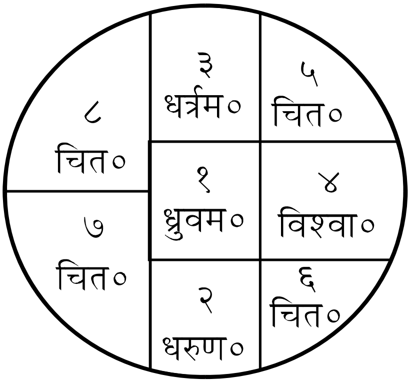

एकादशकपाल:

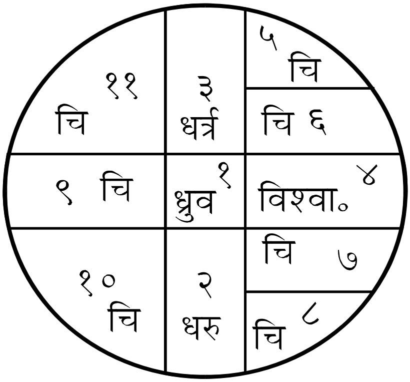

द्वादशकपाल:

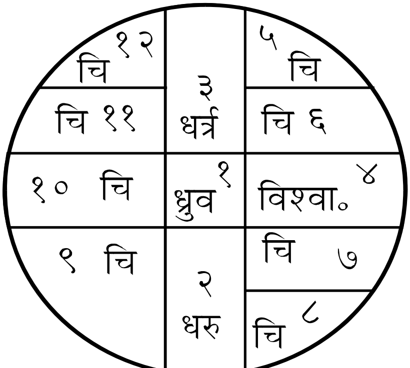

गार्हपत्य खरे कपालोपधाने क्रमः